उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा-281001

अंक : नवम्
संस्करण : प्रथम
(जनवरी 2015)

संरक्षक :
प्रो. ए. सी. वार्ष्णेय
कुलपति, दुवासू

प्रधान सम्पादक :
डॉ. सर्वजीत यादव,
निदेशक प्रसार, दुवासू

सम्पादक गण :
डॉ. गुलशन कुमार
डॉ. शंकर सिंह
डॉ. दीप नारायण सिंह
डॉ. विक्रांत सूदन
डॉ. रुचि तिवारी

प्रकाशक :
समन्वयक,
मुद्रण एवं प्रकाशन विभाग,
दुवासू, मथुरा

मुद्रण :
यमुना सिंडिकेट
मथुरा

दुवासु प्रकाशन संख्या : 122

कुलपति की कलम से

पशुपालक भाईयो,

नया वर्ष अपने साथ हमेशा कुछ नया लेकर आता है और बीते वर्ष की यादें और अनुभव हमारी झोली में छोड़ जाता है। इस बार पशुधन पत्रिका एक नए रूप में प्रस्तुत की जा रही है। इस पत्रिका का उद्देश्य है, पशुपालकोपयोगी नई से नई सूचना, ज्ञान, तथा विधियों को अधिक से अधिक पशुपालकों तक समय से पहुँचाना जिससे वह लाभान्वित हो सकें।

जब यह अंक आपके हाथों में पहुँचेगा तब शरद ऋतु विदा ले रही होगी। जाती सर्दी और बदलते मौसम में, गर्भावस्था की अवधि में तथा अनुर्वरता की समस्या से जूझते पशुओं की देखभाल कैसे हो इन विषयों पर संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास इस अंक के माध्यम से किया जा रहा है।

इस अंक में, रोजगार के अवसर तलाशते युवाओं के लिये मुर्गीपालन को व्यवसाय के रूप में अपनाने से सम्बन्धित एक रोचक लेख तथा पशुपालकों के मार्गदर्शन हेतु निर्देश भी सम्मिलित हैं।

मुझे आशा है, और विश्वास भी, कि सरल शब्दों और रोचक भाषा में लिखे गये लेख आप सभी पशुपालक भाइयों के लिये लाभप्रद होंगे। लेखों को पढ़ने के बाद कुछ जिज्ञासाओं का होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में नि:संकोच पत्र लिखें और अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर पायें। साथ ही इस पत्रिका को और अधिक सूचनापरक बनाने हेतु आपके सुझाव भी आमन्त्रित हैं।

शुभकामनाओं सहित,

(प्रो. ए. सी. वार्ष्णेय)

खुरपका-मुखपका (एफ.एम.डी.) रोगः एक परिचय

डॉ. बृजेश कुमार यादव, डॉ. विवेक कुमार सिंह एवं डॉ. आलोक कुमार चौधरी

औषधि विज्ञान विभाग,

खुरपका-मुखपका बहुत शीघ्र फैलने वाला संक्रामक रोग है, जिसे एफ्थस ज्वर, मैलिगनेट एफ्था, पका, खुरहा आदि नामों से भी जाना जाता है। यह रोग एक विषाणु (वाइरस) के द्वारा होता है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी और सुअरों में यह रोग खूब फैलता है। पशुओं में मृत्यु की संख्या लगभग नहीं के बराबर है, परन्तु रोग ग्रस्त पशु बहुत निर्बल हो जाते हैं, जिससे उनकी उत्पादन क्षमता काफी कम हो जाती है। रोग ग्रस्त गर्भित पशुओं के बच्चे की गर्भ में मरने की सम्भावना बढ़ जाती है। इन्हीं कारणों से इस रोग में मृत्युदर कम होने पर भी देश की अर्थ व्यवस्था को भारी नुकसान पहुँचता है। बसंत एवं शीत ऋतु में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

रोग फैलने के तरीके:

1. रोग ग्रस्त पशु की लार से स्वस्थ पशु के सम्पर्क में आने पर यह रोग फैलता है।
2. दूषित चारा, पानी, नाँद, खाल, दूध व दूध से बने पदार्थ, बर्तन, फर्श तथा श्रमिकों के कपड़ों तथा हाथों से यह रोग तुरन्त फैलता है।
3. इस रोग के बाद स्वस्थ हुए पशु कुछ दिनों तक विषाणु अपने शरीर में छिपाये रखते हैं तथा सम्पर्क में आने वाले स्वस्थ पशुओं को संक्रमित कर देते हैं।
4. पक्षियों के पैरों में चिपककर उनके दूसरे स्थानों पर जाने से भी यह फैलता है।

लक्षण:

1. सर्वप्रथम पशु को तीव्र ज्वर आता है। यह 104-105^{0} फारेनहाइट तक हो सकता है।
2. मुँह से लार बहने लगती है और होठों से चपचपाहट की सी आवाज आने लगती है।
3. दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में कमी आती है।
4. खुर के बीचोंबीच और मुँह के अन्दर, गालों, जीभ, होंठ, तालू तथा मसूढ़ों पर छाले पड़ जाते हैं। जो बाद में फूटकर लाल रंग के, कटे-फटे

किनारे वाले घाव बन जाते हैं। पशु लँगड़ाने लगता है। यह घाव एक से दो हफ्ते में स्वतः भर जाते हैं।

5. कभी-2 थन/अयन पर भी छाले पड़ जाते हैं तथा दूध निकालने में परेशानी तथा पशु को दर्द होता है और आर्थिक दृष्टि से किसानों को भारी नुकसान होता है।

रोग का निदान :

1. पशुओं में लक्षणों को देखकर बीमारी की पुष्टि की जाती है।
2. पशुओं में सुई द्वारा: रोग ग्रस्त पशु के छालों से द्रव्य (तरल) एकत्र कर, प्रयोगशाला में परीक्षण किया जाता है।

रोग की चिकित्सा:

1. रोगग्रस्त पशु के मुँह के छालों को किसी अच्छे एण्टिसेप्टिक घोल जैसे -पोटाश, फिटकरी, बोरिक एसिड, इत्यादि से धोना चाहिए।
2. पैर के छालों पर 1% तूतिया, या फिनाइल का घोल, दिन में कई बार डालना चाहिए।
3. खुर के बीच पड़े घावों पर एण्टिसेप्टिक पाउडर जैसे बोरिक, सल्फोनामाइड छिड़का जा सकता है।
4. लक्षण प्रकट होने पर योग्य पशुचिकित्सक से संपर्क कर उपचार कराना चाहिए।
5. पशुओं को पौष्टिक व मुलायम आहार प्रदान किया जाना चाहिए। हरे चारे व गुड़ के साथ मिश्रित चावल की भूसी काफी लाभप्रद होती है।
6. रोग का संक्रमण यदि अयन व थन पर हो तो दूध साइफन से निकलवाना चाहिए।
7. फुट बाथ 3-4 मीटर लम्बी, 1 मीटर चौड़ी, 30 से.मी. गहरी तथा दोनों ओर एक-एक मीटर का ढाल देकर बनाई जाती हैं।

खुरपका-मुँहपका वैक्सीन :

यह गाय, भैंस, भेड़ बकरी, सुअर में दिया जाता है। पहला टीका 3-4 माह की

आयु में तथा फिर साल में 2 बार हर 6 माह के अन्तर पर दिया जाता है। समय समय पर पशुपालन विभाग द्वारा टीके लगाये जाते हैं। पशुओं को टीके अवश्य लगवाने चाहिए।

स्थानिक रोगग्रस्त क्षेत्रों में निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

1. पशुओं की आवाजाही एक नियम के अनुसार प्रतिबन्धित होनी चाहिए।
2. गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि जानवरों का इस बीमारी के खिलाफ टीकाकरण करना चाहिए और इनको चिन्हित करना चाहिए।
3. पशुओं की खरीददारी उन क्षेत्रों से नहीं करनी चाहिए, जहाँ यह बीमारी ज्यादातर होती है।
4. बिना टीकाकरण वाले पशुओं को पशु मेले में नहीं ले जाना चाहिए।
5. उन पशुओं की खरीददारी करनी चाहिए जिनका टीकाकरण 15-21 दिन पहले हो चुका हो।

बीमारी होने के पश्चात निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए।
2. बीमार पशुओं को अलग और सीमित क्षेत्र में रखना चाहिए।
3. बीमार पशुओं को सामान्य चारागाह में चरने से रोकना चाहिए।
4. बीमार पशुओं को नदी तालाब आदि से जल पीने से रोकना चाहिए क्योंकि ये उन्हें दूषित कर सकते हैं।
5. बछड़ों को संक्रमित माँ का दूध पीने से रोकना चाहिए।

एफ.एम.डी. का पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रभाव

1. दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।
2. गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है।
3. बछड़ों में हृदय सम्बन्धी जानलेवा बीमारी होती है।
4. संक्रमित भैंसों में सर्रा एवं गलघोंटू बीमारी होने की संभावना बढ़ जाती है।
5. बाहरी नस्ल की गायों (एच.एफ.) में थेलेरिया संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।
6. संक्रमित पशुओं में खुर बढ़ जाने से उन्हें चलने में परेशानी होती है।
7. रोग समाप्त हो जाने के बाद कुछ पशुओं में गर्मी सहन करने की क्षमता में कमी हो जाती है तथा पशु गर्मी के दिनों में हाँफता रहता है।

दुधारू पशुओं में अनुर्वरता (Infertility)/बाँझपन (Sterility) की समस्या एवं समाधान

डॉ. संजय कुमार मिश्र एवं डॉ. अतुल सक्सेना

मादा पशु रोग निदान विभाग

पशुओं में अनुर्वरता पशुपालकों के लिए एक महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत समस्या है। उचित रख-रखाव एवं पशु प्रजनन से सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखने से अनुर्वरता से ग्रस्त पशुओं विशेषकर भैंसों, जो अंतत: वधशाला तक पहुँच जाती हैं, की संख्या को काफी कम कर सकते हैं। प्रजनन की दृष्टि से सामान्यतया गाय को प्रत्येक 13 माह में तथा भैंस को प्रत्येक 14 माह में एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देना चाहिए। एक स्वस्थ पशु समूह में लगभग 60 प्रतिशत पशुओं को पहली बार के कृत्रिम गर्भाधान में ही गर्भित हो जाना चाहिए तथा एक पशु समूह में अनुर्वरता की समस्या 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

पशुओं में अनुर्वरता के बहुत से कारण हो सकते हैं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में प्रजनन क्रिया को प्रभावित करते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम आनुवांशिक कारण हैं जो जननांगों की संरचना को आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। आनुवांशिक विकारों से प्रभावित पशुओं को समूह से हटा देना चाहिए तथा उनके प्रजनन को भी प्रतिबन्धित कर देना चाहिए। अण्डाशय का न होना या अण्डाशय का कम विकसित होना, गर्भाशय ग्रीवा (सर्विक्स) के दो मुँह होना, भग का छोटा होना एवं श्वेत ओसर रोग, फ्रीमार्टिन तथा पशु का सदैव गर्म/ऋतु में रहना कुछ आनुवांशिक विकार हैं। दूसरे प्रकार के कारण क्रियात्मक अथवा हार्मोन संबन्धी कारण हैं जिसमें पशुओं में विभिन्न हारमोन के असंतुलन अर्थात् कमी या अधिकता से अनेक समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं जो अनुर्वरता का कारण बन सकती हैं। हार्मोन्स के असंतुलन के फलस्वरूप तीन प्रकार की व्याधियाँ हो सकती हैं यथा मदकाल में न आना, अस्पष्ट मद काल तथा पुटीय डिंब ग्रन्थि की उपस्थिति। सामान्यतया पशु गर्भावस्था में, गर्भाशय में मवाद (Pus) होने, गर्भाशय में एक ही श्रृंग के होने, गर्भाशय के अन्दर गर्भस्थ शिशु की मृत्यु होने या संक्रमण होने या गर्मी की अवस्था का उचित समय पर अवलोकन न होना, मदकाल में न आने का कारण हैं। इसके अतिरिक्त पशुआहार में पौष्टिक तत्वों की कमी, पुराने रोग, उम्र का अधिक होना, निष्क्रिय अण्डाशय होना या अण्डाशय पर सिस्ट बनना, अधिक दुग्ध उत्पादन से उत्पन्न तनाव भी पशुओं के मदकाल में न आने के कारण हैं।

अस्पष्ट मद काल की समस्या गायों की अपेक्षा भैंसों में बहुलता से दृष्टिगोचर होती है। पशुपालक सामान्यत: पशु को तभी गर्मी में मानता है जब मादा पशु रंभाती है तथा समूह के अन्य पशुओं पर चढ़ने की क्रिया दर्शाती है। परन्तु अस्पष्ट मदकाल में पशु गर्मी में तो होता है लेकिन गर्मी के बाह्य लक्षण प्रदर्शित नहीं करता है। भैंस सामान्यत: रात या प्रात: काल के समय गर्मी पर आती है। अधिकांश भैंसों में यह देखा गया है कि उनमें रंभाने/किल्लाने की प्रक्रिया गायों की अपेक्षा कम होती है। इस दशा में पशु का गुदा परीक्षण करने पर उनके जननांग सामान्य महसूस होते हैं। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि अन्त: स्रावी रचना किन कारणों से कम हार्मोन्स उत्पन्न करती है जो कि मदकाल के मन्द लक्षणों के लिए उत्तरदायी होती है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार सुदृढ़ अंत: स्रावी रचना तथा अधिक ईस्ट्रोजन उत्पन्न करने वाली मादा प्रतिकूल वातावरण में भी मदकाल के अच्छे लक्षण प्रदर्शित करती है।

पुटीय डिम्ब ग्रन्थि (सिस्टिक ओवरी) की समस्या संकर प्रजाति की गायों में सिस्टिक अण्डाशय अनुर्वरता उत्पन्न करने वाले कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण है। इस समस्या से ग्रस्त पशु लगातार मदकाल में बना रहता है या दो ऋतुचक्र के बीच का अन्तराल सामान्य से काफी कम हो जाता है या पशु कभी

मदकाल में नहीं आता है अथवा असामान्य मदकाल की अवस्था में रहता है। इसका मुख्य कारण पीयूष ग्रन्थि द्वारा कम मात्रा में ल्यूटिनीकारक हार्मोन (एल. एच.) का स्रवण है जिससे डिंबक्षरण (Ovulation) तथा पीतपिण्ड (C.L.) का विकास सामान्य रूप से नहीं हो पाता है।

इसके अतिरिक्त कई संक्रामक रोग भी प्रजनन को प्रभावित करते हैं। संक्रामक रोग मुख्यत: जीवाणु, विषाणु, कवक एवं प्रोटोजोआ जनित हो सकते हैं। जीवाणु जनित कारक मुख्यत: ब्रूसेल्लोसिस, लैप्टोस्पाइरोसिस, कैम्पाइलो-बैक्टीरिओसिस, लिस्टीरियोसिस, क्षय रोग या टी.बी. तथा जे.डी. हैं। यह जीवाणु जनित रोग पशुओं में गर्भपात के कारक हैं तथा गर्भपात के बाद अधिकांश पशु जेर नहीं गिराते हैं और अन्तत: गर्भाशय पेशी शोथ एवं बन्ध्यता (बाँझपन) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। विषाणु जनित रोगों में संक्रामक बोवाइन राइनो-ट्रैकियाइटिस के विषाणु कई रूपों में रोग उत्पन्न करते हैं तथा उक्त रोग के कारण 15 दिन से 2 -3 माह के बीच पशु का गर्भपात हो जाता है तथा जेर बाहर नहीं निकलती है। गो-पशु गर्भपात महामारी का संचरण मक्खी या मच्छर से होता है। इस रोग में गर्भपात 6 से 8 माह के बीच (अन्तिम त्रैमास) में होता है। इस रोग का बचाव औषधि के सेवन तथा पशुशाला की स्वच्छता का ध्यान रखने पर किया जा सकता है। इसी प्रकार कवक जनित अनुर्वरता एवं गर्भपात ऐस्पर्जिलस तथा म्यूकोरेल्स की विभिन्न प्रजातियों के कारण होता है। इसमें भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। प्रोटोजोआ समूह से होने वाले रोगों में ट्राइकोमोनिएसिस मुख्य है। यह रोग गायों का नैसर्गिक प्रजनन संक्रमित साँड द्वारा कराने पर अथवा कृ0 ग0 में संक्रमित यन्त्रों के प्रयोग करने से फैलता है। इससे गर्भ काल के 2 - 4 माह की अवस्था में गर्भपात हो जाता है, पूर्ण बन्ध्यता हो जाती है एवं इसके पश्चात् मादा पशु बार-बार गर्मी पर तो आती है परन्तु गर्भधारण नहीं हो पाता है।

साथ ही साथ प्रजनन सम्बंधी विभिन्न अंगों की विकृतियाँ, चोट तथा संक्रमण के फलस्वरूप पशु अनुर्वरता से पीड़ित हो सकता है। अधिकांश विकृतियाँ पशु के ब्याने के बाद पायी जाती हैं। परन्तु यह किसी भी अवस्था में हो सकती हैं। इन विकृतियों में अण्डाशय की सूजन, अण्डाशय की रसौली, अण्डवाहिनी में मवाद/पानी भरा होना, गर्भाशय में घाव/रसौली, गर्भाशय में सूजन/एवं मवाद भरा होना, गर्भाशय ग्रीवा का छोटा होना, गर्भाशय ग्रीवा का शोथ/रसौली (8) योनि शोथ /रसौली (9) भग की रसौली, मुख्य विकृतियाँ हैं।

उपरोक्त विकृतियों की पहचान हेतु पशु के जननांगों की समुचित जाँच पशु चिकित्सक से करवाना अतिआवश्यक है। सम्यक जाँचोंपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विकृति से ग्रस्त पशु ठीक होने योग्य है अथवा नहीं। संक्रमण से होने वाली विकृतियों को योनि स्राव के सुग्राही परीक्षण के पश्चात् उचित औषधि निर्धारित मात्रा में निर्धारित समय तक देने से पूर्ण उपचार करना संभव है।

पशुओं में पोषक तत्वों की कमी के विशेष लक्षण प्रारम्भ में प्रजनन अंगों पर प्रदर्शित होते हैं जिसमें मुख्य रूप से पशु का समय पर गर्मी के लक्षण न दर्शाना, गर्भ न ठहरना , मद चक्र अनियमित होना तथा भ्रूण की मृत्यु होना प्रमुख है। पोषक तत्वों की कमी तथा अधिकता पशुओं की प्रजनन क्षमता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। यदि पशु को लम्बे समय तक आवश्यकतानुसार पोषक तत्व प्राप्त नहीं हो पाते है तो निम्नांकित लक्षण प्रदर्शित हो सकते हैं -

- प्रजनन की दृष्टि से वयस्क होने में देरी/परिवक्ता की आयु अधिक होना।
- ऋतुचक्र का अनियमित होना।आवश्यक हारमोन्स की तथा ऊर्जा की अत्यधिक कमी होने से अण्डाणुओं की वृद्धि कम होना तथा असमय ही अण्डक्षरण (Ovulation) होना।
- ब्याने के बाद समुचित संतुलित आहार न उपलब्ध होने पर भविष्य में गर्भधारण क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव ।

आवश्यकता से अधिक पोषक तत्वों युक्त आहार पशुओं को खिलाने पर शरीर तथा जननांगों में वसा (चर्बी) का अत्यधिक जमाव हो जाता है जिससे निम्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं -

- अण्डाशय का छोटा होना तथा मदचक्र का न आना ।
- अण्डाणुओं की गतिशीलता प्रभावित होना तथा कई बार गर्भित कराने पर भी गर्भ न ठहरना/रुकना ।
- ब्याने के दौरान अधिक परेशानी होना (कठिन प्रसव/असामान्य प्रसव)।

प्रबन्धनजनित कारण:

1. प्रजनन क्षमता की दृष्टि से अधिक गर्म या ठण्डा मौसम सर्वाधिक अनुपयुक्त होता है। उष्ण कटिबन्धीय देशों में गायें वर्षा ऋतु में तथा भैंसें मई से जुलाई तक गर्मी पर कम आती हैं। गोपशु अधिक सर्दी अथवा अधिक वर्षा के दौरान न्यूनतम संख्या में ऋतुकाल में आते हैं।
2. उपयुक्त समय पर पशु में गर्मी के लक्षणों को न पहचानना भी पशुओं में अनुर्वरता उत्पन्न करता है। यह उन पशुओं में और महत्वपूर्ण हो जाता है जब उन्हें चरने के लिए नहीं खोला जाता है।
3. ब्याने के लगभग 60 दिनों बाद प्रजनन (नैसर्गिक/कृ0 ग0) कराना चाहिए। इससे पूर्व प्रजनन कराने पर गर्भ धारण का प्रतिशत कम हो जाता है।
4. असामान्य/कठिन प्रसव के लक्षण दिखाई देने पर शीघ्र ही पशु चिकित्सक की सहायता लेना सुनिश्चित करें।
5. ब्याने के बाद अधिक समय तक असामान्य स्राव यथा मवाद गिराने वाले पशु का समुचित उपचार पशुचिकित्सक द्वारा कराने के पश्चात् समुचित लैंगिक विश्राम देना चाहिए।
6. अधिक शोर वाले वातावरण तथा अशान्त स्थान पर मादा पशु का नैसर्गिक/कृत्रिम गर्भाधान कराने पर उसकी प्रजनन क्षमता पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
7. गर्भपात के कारणों की पहचान की जाँच एवं प्रभावित पशु का समुचित उपचार किया जाये।
8. प्राकृतिक गर्भाधान में प्रयोग होने वाले साँड़ों की नियमित जाँच होना अतिआवश्यक है। कृ0 ग0 में सदैव विसंक्रमित उपकरणों का प्रयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए तथा केवल प्रमाणित वीर्य से ही कृ0 ग0 कराना चाहिए। संक्रमित पशुओं को प्रजनन से वंचित रखना बेहतर होता है।
9. ब्रूसेलोसिस द्वारा गर्भपात से बचाव के लिए बछिया या पड़िया में ब्रूसेला एर्बाटस कॉटन स्ट्रेन-19, जीवित प्रतिजन का टीका लगाकर रोग

प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। डेरी फार्मो पर स्वच्छ वातावरण रखना अतिआवश्यक है एवं जो आगंतुक ऐसे डेरीफार्मो से आये हों जहाँ गर्भपात का प्रकोप हो चुका हो उनका प्रवेश डेरी फार्म में प्रतिबन्धित कर देना चाहिए। गर्भपात में निकले भ्रूण एवं जेर (अपरा) को किसी गहरे गढ्ढे में चूना मिलाकर दबा देना चाहिए।

पशुपालक द्वारा असावधानी वश उत्पन्न अनुर्वरता/बाँझपन:

1. पशु की गर्मी में होने का पता न रखना
2. प्रजनन के अनुचित/गलत तरीके का उपयोग
3. जीवाणुरहित यंत्रों का प्रयोग न करना
4. रोगों से बचाव न करना (समय पर टीकाकरण न कराना)
5. उचित पोषण न उपलब्ध कराना

पशुओं में अनुर्वरता/बाँझपन से बचाव हेतु मुख्य सुझाव:

1. पशुओं को उत्तम गुणवत्ता का संतुलित आहार देना चाहिए।
2. गायों से प्रति वर्ष एक बच्चा प्राप्त करें। दो वर्ष में बच्चा देने वाली गाय का सम्यक परीक्षण करवाना चाहिए।
3. गाय को ब्याने के बाद 2 महीने तक गर्भित नहीं कराना चाहिए।
4. गाय कब गर्माती है, यह पता करना चाहिए और उसे गर्मी की मध्य अवस्था में गर्भित कराना चाहिए।
5. रोगों से पूर्ण बचाव हेतु समय-समय पर विभिन्न रोगों का टीकाकरण कराना चाहिए।
6. सामान्यत: गर्भित होने के 2 से 3 माह के भीतर गर्भ परीक्षण अवश्य कराना चाहिए।
7. डेरी फार्म पर सम्पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

अनुर्वरता/बाँझपन से ग्रस्त पशुओं का पशुचिकित्सक से सम्यक परीक्षण कराना नितान्त आवश्यक है जिससे कि पशु के गर्मी मे न आने के कारणों को आसानी से पहचाना जा सके तथा शीघ्रातिशीघ्र उसके समुचित उपचार हेतु उचित विधि अपनाई जा सके।

पोषण का पशु प्रजनन पर प्रभाव

डॉ. राजू कुशवाहा एवं डॉ. मुनीन्द्र कुमार
पशु पोषण विभाग

संतुलित पोषण सभी पशुओं की प्रजनन क्षमता को प्रभावी बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाता है। असंतुलित पोषण पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं का कारण हो सकता है। उचित प्रजनन हेतु ऊर्जा व प्रोटीन प्राथमिक एवं अति महत्वपूर्ण पोषक तत्व होते हैं। ऊर्जा व प्रोटीन के अतिरिक्त खनिज व विटामिन भी उत्तम प्रजनन क्षमता हेतु आवश्यक है। पशु प्रजनन को प्रभावित करने वाले प्रमुख पोषक कारक निम्नवत है:-

1. **ऊर्जा:** संतुलित ऊर्जा का पशुओं के प्रजनन में एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऊर्जा के सीमित सेवन से पशुओं में प्रजनन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्यायें जैसे कि गर्भधारण की दर में कमी, दीर्घ गर्भकाल तथा समय पर गर्मी में न आना इत्यादि है। सीमित ऊर्जा के अन्तर्ग्रहण के अतिरिक्त अत्यधिक ऊर्जा का सेवन करने से भी पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न होती है। आवश्यकता से अधिक ऊर्जा के सेवन से शरीर में वसा का संचय होने की दर बढ़ जाती है जिससे पशुओं में समय से जेर का न गिरना, बच्चेदानी में संक्रमण होना, अण्डाशय में गाँठ का बनना इत्यादि समस्यायें होने की सम्भावना बनी रहती है। पशुओं में संतुलित ऊर्जा बनाये रखने हेतु उचित मात्रा में अनाजों व वसा का आहार में समावेश करना चाहिए।

2. **प्रोटीन:** पशुओं के प्रजनन में प्रोटीन भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लम्बे समय तक अपर्याप्त मात्रा में प्रोटीन का सेवन पशु प्रजनन से सम्बन्धित कई विकारों को जन्म देता है। अपर्याप्त प्रोटीन का सेवन वयस्क मादा की तुलना में प्रथम ब्याँत वाली मादाओं में अधिक प्रभाव डालता है। तेजी से बढ़ रही बछियों के आहार में प्रोटीन की कमी से कई विकार जैसे कि मादा प्रजनन अंगो का कम विकसित होना, ब्याने के समय समस्यायें आना तथा ब्याने के बाद क्षमता से कम दुग्ध देना इत्यादि है।

उपरोक्त समस्याओं से बचने के लिए पशु के आहार में उचित मात्रा में प्रोटीन युक्त घटक जैसे सोयाबीन, सरसों, मूँगफली व बिनौले आदि की खल का समावेश करना चाहिए।

3. **खनिज व विटामिन:** खनिज व विटामिन पशुओं में प्रजनन सहित सभी प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है। पशु आहार में खनिज व विटामिन का असंतुलन प्राय: प्रजनन में कमी के कारणों के रुप में परिलक्षित होता है। पशु आहार में कैल्शियम, फास्फोरस व विटामिन डी का असंतुलन व उनका पारस्परिक प्रभाव प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन घटकों की कमी से प्रजनन सम्बन्धी समस्यायें जैसे दुग्ध उत्पादन में कमी, अण्डाशय की गतिविधि में कमी व अनियमित रुप से गर्मी में आना इत्यादि है। इन घटकों के अतिरिक्त अन्य अल्प मात्रा में आवश्यक किन्तु अतिमहत्वपूर्ण तत्व जैसे कॉपर, जिंक, आयोडिन, मैंगनीज, कोबाल्ट, विटामिन ए व विटमिन ई इत्यादि भी पशुओं के प्रजनन में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इन तत्वों की कमी से प्रजनन में होने वाले अवांछित प्रभावों से बचने के लिये संतुलित खनिज मिश्रण को उचित मात्रा में पशु आहार में समावेशित करना चाहिए। संतुलित खनिज मिश्रण विश्वविद्यालय के पशु पोषण विभाग से या बाजार से उचित मूल्य पर खरीदा जा सकता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि संतुलित पोषण ही पशुओं में उचित प्रजनन हेतु आवश्यक है। पोषक तत्वों की कमी व अधिकता दोनों की पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं के लिये उत्तरदायी है।

मुर्गीपालन के द्वारा रोजगार

डॉ. पी. के. शुक्ला
कुक्कुट विज्ञान विभाग

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही मुर्गीपालन पिछड़ी तथा कमजोर जातियों के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ है। अतिरिक्त व्यवसाय, अधिक आय व अच्छा आहार इन सब लाभों को मिलाकर मुर्गीपालन ने हमारे देश की बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या से निपटने के लिये स्वरोजगार सम्यक नये आयाम प्रदान किये हैं। इस उद्योग द्वारा बहुत से पुरुष तथा महिलायें अपना कारोबार स्वयं प्रारंभ कर सकती हैं। पोल्ट्री उद्योग दूसरे सहायक उद्योगों को भी जन्म देता है, जैसे इस उद्योग के लिये साज-सामान बनाने वाले उद्योग, आहार तैयार करने वाली फैक्ट्रियाँ तथा दवाइयाँ बनाने वाले कारखाने आदि। इन सहायक उद्योगों में बहुत से व्यक्तियों को नौकरियाँ भी मिलेंगी। इस प्रकार यह उद्योग देश में बेरोज़गारी की समस्या काफी हद तक हल करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

छोटे एवं मध्यम वर्ग के किसानों के लाभ के लिये मुर्गीपालन अपने आप में कई विशेष एवं आकर्षक बातों से भरपूर है जैसे- मुर्गीपालन द्वारा लगाई गई पूँजी की शीघ्र एवं नियमित रूप से वापिसी। एक महीने के अंदर माँस वाली मुर्गियाँ बाजार में जाने के लिये तैयार हो जाती हैं। अण्डों का उत्पादन भी पाँच माह के बाद शुरू हो जाता है, तथा सप्ताह में अण्डों को दो तीन बार बेचा जा सकता है। आवश्यक तकनीकी जानकारी तथा थोड़ी सी पूँजी लगाकर यह व्यवसाय प्रारंभ किया जा सकता है। इस कार्य में परिवार का प्रत्येक सदस्य बालक, बुर्जुग तथा महिलायें अपना योगदान दे सकती हैं। इस प्रकार खाली समय के सदुपयोग के साथ ही आर्थिक लाभ की प्राप्ति होती है।

इस व्यवसाय को अपनाकर अपनी आमदनी बढ़ाने के साथ-साथ अपने भोजन को भी पौष्टिक बनाया जा सकता है। इस बारे में दो राय नहीं हो सकती कि मुर्गियों से मिलने वाले खाद्य वस्तुओं की आहार पौष्टिकता बहुत उत्तम होती है। इनमें अण्डे, माँस आदि शामिल हैं। साथ ही यह बात महत्वपूर्ण है कि मुर्गीपालन उद्योग में उत्पादन अन्य उद्योगों की तुलना में बहुत जल्द शुरू हो जाता है। इन बातों के अर्न्तगत इस कथन की पुष्टि होती है कि अगर सरकार की ओर से अपेक्षित प्रोत्साहन मिले तो निश्चय ही यह उद्योग आम जनता के आहार में बड़े पैमाने पर प्रोटीन जुटाने की दिशा में बहुत कुछ कर सकता है। अगर इस व्यवसाय का वैज्ञानिक आधार पर विकास किया जावे तो देश को बहुत लाभ होगा। एक संपूर्ण तथा आदर्श आहार के रूप में अण्डों का स्थान सबसे ऊँचा है। कुछ बातों में तो यह दूध से भी बाजी मार जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि अण्डा कुदरती तरीके से सील बंद होता है और इसमें किसी तरह की मिलावट संभव नहीं है।

मुर्गी फार्म की स्थापना किसी भी स्थान पर की जा सकती है। कई मवेशियों के पालन-पोषण की तरह भौगोलिक बाधायें मुर्गी फार्म की स्थापना में आड़े नहीं आतीं, यहाँ तक कि एक मुर्गी को पालने के लिये एक वर्ग फुट जगह काफी होती है। साथ ही इच्छानुसार मुर्गीपालन फालतू समय में अतिरिक्त आमदनी के लिये या पूरा समय लगाकर एक बड़े उद्योग के रूप में चलाया जा सकता है। मुर्गी फार्म के स्थान का चुनाव एक मुख्य प्रश्न है। मुर्गी फार्म के लिये आवश्यक जमीन, यातायात के समुचित साधन, पानी एवं बिजली जैसे आवश्यक सुविधाओं की ओर पूरा ध्यान देना आवश्यक है। फार्म स्थापित करते समय स्थानीय नगरपालिका या ग्राम-सभा के नियमों की जानकारी भी आवश्यक है।

वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से दो प्रकार की उन्नत किस्म की मुर्गियाँ आज हमारे देश में उपलब्ध है - एक तो वे जिनमें अण्डे देने की क्षमता अधिक होती है , दूसरी वे जिनकी शारीरिक बढवार काफी तेजी से होती है, ऐसी मुर्गियाँ 6 सप्ताह की आयु में ही लगभग 1 से डेढ़ किलोग्राम वजन की हो जाती है, इनको हम ब्रॉयलर कहते हैं। जहाँ यातायात के साधन सुलभ न हों वहाँ के मुर्गीपालकों को अण्डों के लिये मुर्गियाँ न पालकर माँस के लिये मुर्गियाँ पालनी चाहिए। क्योंकि अण्डा जल्दी खराब हो जाता है, तथा समुचित यातायात की व्यवस्था न होने के कारण टूट जाता है। इसके विपरीत माँस के लिये पाली गई मुर्गियाँ अपेक्षाकृत आसानी से बाजार लायी जा सकती हैं।

मुर्गीपालन अन्य व्यवसायों की अपेक्षा कहीं अधिक नाजुक धंधा है, अत: इसे अपनाने से पहले हर इच्छुक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य को जाँचना जरूरी है। प्रारंभ में कुक्कुट पालन थोड़ी सी मुर्गियों से प्रारंभ करके एक सहयोगी धंधे के रूप में अपनाना चाहिए। जैसे-जैसे आपकी व्यवसायिक क्षमता और अनुभव में वृद्धि होगी वैसे ही आप उसको बढ़ाकर एक बड़े उद्योग का रूप दे सकते हैं।

सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि इच्छुक व्यक्ति अपनी ही पूँजी से यह कार्य प्रारंभ करें। कई किसान व बेरोजगार व्यक्ति बैंक आदि एजेन्सियों से आसान किश्तों में ऋण प्राप्त कर सकते हैं। सरकार भी अनुदान, तकनीकी जानकार तथा आवश्यक प्रशिक्षण की सुविधा ऐसे व्यक्तियों को प्रदान कर उनको प्रोत्साहित करती है।

देशी मुर्गियों से उत्पादन क्षमता कम होने के कारण उन्नत किस्म की मुर्गियाँ पालना अधिक लाभदायक है। इन मुर्गियों की कई जातियाँ मुर्गियों के उत्तम प्रजनन द्वारा तैयार की जाती हैं। इस प्रकार से प्राप्त मुर्गियों को संकर मुर्गियों की संज्ञा दी जाती है। यह मुर्गियाँ अपेक्षाकृत कहीं अधिक सहनशील, अधिक अण्डे देने वाली व हमारे देश की जलवायु के अनुकूल होती हैं।

मुर्गीपालन में होने वाले खर्चों का 70 प्रतिशत केवल उनके खाने-दाने पर ही होता है। मुर्गियों से अधिकाधिक लाभ पाने के लिये उन्हें संतुलित आहार देना चाहिए अर्थात उनके दाने में प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन्स एवं खनिज लवण आदि सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में मौजूद होना चाहिए। छोटे चूजों व मुर्गियों के खाने के बर्तन अलग-अलग प्रकार के होने चाहिए क्योंकि मुर्गियों की एक विशेष आदत होती है, जिसमें वे दाना खाने के बजाय ज्यादा बिखेरती हैं, और दाने की बरबादी होती है। पानी के बर्तन छोटे बच्चों के लिये ऐसे हों जिनमें वह पानी में डूब न जायें। गर्मी के दिनों में मिट्टी के बर्तनों में पानी रखना उपयोगी रहता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि मुर्गियां जितना दाना खाती हैं उससे लगभग दो गुना पानी पीती हैं। मुर्गियों को 24 घंटे अगर दाना न मिल पाये तो कोई विशेष नुकसान नहीं होता, पर 24 घंटे पानी न मिलने

पर उनका जीवित रहना अत्यंत कठिन है। इसलिये साफ व ताजे जल की व्यवस्था का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

मुर्गियों के स्वास्थ्य की देखभाल नियमित रूप से करना आवश्यक है। कुछ अचानक बीमारियों से बचाव के लिये उनको टीके लगवा देना चाहिए। मुर्गियों की बीमारी की रोकथाम उनके इलाज की अपेक्षा अधिक लाभकारी व उचित है।

अण्डे व माँस की खपत अगर मुर्गीपालकों के आस-पास के इलाके में ही हो जाती है तो यातायात पर पड़ने वाले खर्च से बचा जा सकता है व अधिक लाभ कमाया जा सकता है। मुर्गियों से प्राप्त उत्पादन के विक्रय में कई सहकारी समितियाँ भी सहायता करती हैं। विशेष जानकारी के लिये इलाके के खण्ड विकास अधिकारी का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

मुर्गीपालन के इच्छुक व्यक्तियों को अपने सामर्थ्य के अनुसार निश्चित करना चाहिए कि वह किस प्रकार की व कितनी मुर्गियों से अपना धंधा शुरू करें। सहायक धन्धे के रूप में शुरू करने के लिये 200 अण्डे वाली मुर्गियों की इकाई उचित रहेगी। ब्रायलर फार्म के लिये 100 से 200 चूजे प्रति सप्ताह के आधार पर धंधा शुरू करके बड़े पैमाने तक ले जाया जा सकता है। मुर्गीपालन व्यवसाय की सफलता तभी संभव है जब आप स्वयं रुचि एवं मेहनत के साथ इन बातों को ध्यान में रखते हुए प्रयत्नशील रहें।

पशुपालकों के लिए उत्तम पशुपालन हेतु महत्वपूर्ण निर्देश

डॉ. संजय कुमार मिश्र एवं डॉ. जय सिंह
उपकार परियोजना

पौष (जनवरी)

1. पशुओं का शीत/ठण्ड से समुचित बचाव करें।
2. तीन माह पूर्व गर्भाधान कराये गये पशुओं का गर्भ परीक्षण करायें। जो पशु गर्भित नहीं हैं उन पशुओं का सम्यक जाँचोपरांत समुचित उपचार करायें।
3. उत्पन्न संतति का विशेष ध्यान रखें।
4. दुहान से पहले एवं बाद में अयन को (1:10000 पोटेशियम परमैगनेट के घोल से) अच्छी तरह साफ कर लें।
5. नवजात बछड़ों को खीस पिलायें एवं ठंड से बचायें।
6. पड्डों को अंत:परजीवी नाशक दवा पिलायें।
7. पशुओं को ताजा या गुनगुना पानी पिलायें।
8. बकरे व भेड़ों को ज्यादा दाना न खिलाकर अन्य चारा दें।
9. दुधारू पशुओं को गुड़ खिलायें।
10. दुहान के बाद थन पर नारियल का तेल मलें।
11. पशुशाला को भरसक साफ व सूखा रखें।

माघ (फरवरी)

1. बाह्य परजीवी से बचाव हेतु दवा से नहलायें।
2. कृत्रिम गर्भाधान करवायें।
3. खुरपका, मुँहपका रोग से बचाव हेतु टीका लगवायें।
4. गर्भ परीक्षण करायें एवं अनुर्वर पशुओं का उपचार करायें।

फाल्गुन (मार्च)

1. पशुशाला की सफाई व पुताई करायें।
2. बधियाकरण करायें।
3. खेत में चरी सूडान तथा लोबिया की बुआई करें।
4. गाय, भैंस व बकरी का क्रय करें।
5. मौसम में परिवर्तन से पशुओं का बचाव करें।

चैत्र (अप्रैल)

1. जायद के हरे चारे की बुआई करें, बरसीम चारा बीज उत्पाद हेतु कटाई कार्य करें।
2. अधिक आय हेतु स्वच्छ दुग्ध उत्पादन करें।
3. तीन माह पूर्व गर्भाधान कराये गये पशुओं का गर्भ परीक्षण करायें। जो पशु गर्भित नहीं हैं उन पशुओं सम्यक जांचोपरांत समुचित उपचार करायें।

वैशाख (मई)

1. गर्मी से बचाव का उपाय करें।
2. गलाघोटूँ तथा लँगड़िया बुखार का टीका समस्त पशुओं में लगवायें।
3. पशुओं को हरा चारा पर्याप्त मात्रा में खिलायें।
4. पशुओं को स्वच्छ जल पिलायें तथा प्रात: एवं सायं नहलवायें।
5. पशुओं को लू एवं गर्मी से बचाने की व्यवस्था करें।
6. पशुओं को नमक तथा खनिज मिश्रण का सेवन करायें।
7. गर्भ परीक्षण तथा अनुर्वर पशुओं की चिकित्सा करायें।

जेठ (जून)

1. पशुओं को लू से बचायें।
2. हरा चारा पर्याप्त मात्रा में दें।
3. अन्त: परजीवी से बचाव हेतु औषधि पान करायें।
4. खरीफ के चारे मक्का, लोविया के खेत की तैयारी करें। सूखे खेत की चरी न खिलायें अन्यथा जहर फैलने की सम्भावना भी हो सकती है।
5. तीन माह पूर्व गर्भाधान कराये गये पशुओं का गर्भ परीक्षण करायें। जो पशु गर्भित नहीं हैं उन पशुओं सम्यक जाँचोंपरांत समुचित उपचार करायें।

बाह्य परजीवी रोग एवं बचाव

डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. विक्रान्त सूदन एवं डॉ. अमित कुमार जायसवाल
पारजैविकी विज्ञान विभाग

ऐसे रोग जो शरीर के बाहरी अंगो जैसे त्वचा आदि पर परजीविओं के संक्रमण से उत्पन्न होते हैं, बाह्य परजीवी रोग कहलाते हैं ऐसे रोग निम्न परजीविओं के द्वारा फैलाये जाते है-

1- किलनी (टिक्स) के द्वारा - चीचड़ी रोग

2- माइट्स से उत्पन्न रोग - खाज अथवा खौड़ा रोग

3- जुएँ पड़ना

चीचड़ी रोग के परजीवी पशुओं के बाह्य शरीर पर चिपक कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं और उन्हीं से अपना पोषण लेते हैं। इससे पोषक को अत्यंत कष्ट होता है। कुछ बाह्यपरजीवी तो पोषक का रक्त चूसते हैं, कुछ चरम उत्तेजक होते हैं तो कुछ पशुओं के शरीर पर घाव पैदा करते हैं। कुछ बाह्यपरजीवी पोषक के पैरों की चमड़ी को खा कर उनको कष्ट पहुँचाते हैं। इससे पशु को खुजली होती है और वह बेचैन रहता है, वह खाना-पीना कम कर देता है। शरीर पर इनके चिपके रहने से पशुओं में दुर्बलता, रक्तहीनता एवं जलन पैदा करना इन परजीवियों का मुख्य कार्य है। पशु रोग से ग्रसित होकर अनुत्पादक हो जाते हैं और उनकी वृद्धि रूक जाती है।

खाज अथवा खुजली अथवा खौडा रोग-

परिचय- यह चर्म छूतरोग है। यह माइट्स नामक परजीवी से उत्पन्न होता है। यह परजीवी त्वचा के अन्दर 0.5-1 इंच की गहराई तक जाकर वहीं पर अंडे देते हैं। इसमें अत्यधिक खुजलाहट होती है एवं त्वचा में पपड़ी पड़ कर दरार बन जाती है। त्वचा मोटी हो जाती है इसमें संक्रमण होने से फोड़ा फुंसी निकल आते हैं जो अत्यधिक कष्टदायी होते हैं।

प्रमुख रूप से माइट्स निम्न प्रकार के होते हैं जो खाज को उत्पन्न करते है, जैसे- डिमोडेक्टिक खाज, सारकोप्टिक खाज, कोरिओप्टिक खाज तथा सोरोप्टिक खाज। *डिमोडेक्टिक खाज* का परजीवी पशुओं के बालों की जड़ों में रहता है और वहाँ पर सूजन उत्पन्न करता है, कुछ समय बाद वहाँ की चमड़ी मोटी हो जाती है तथा बाल गिर जाते हैं। यदि इन स्थानों पर मवाद उत्पन्न करने वाले जीवाणओं का संक्रमण हो जाए तो वहाँ पर फोड़ा फुंसी बन जाते हैं। इस प्रकार की खाज विशेष रूप से कुत्तों में देखने को मिलती है। वैसे यह पशुओं और बकरियों में भी होती है। यह शरीर के आँख, कान, गर्दन और पीठ के भागों में होती है। यह खाज प्राय दो रूपों में मिलती है, सूखा/परतदार तथा दानेदार/फुन्सीदार। सूखी/परतदार खाज में चमड़ा मोटा होकर सिकुड़ जाता है और ताँबे के समान लाल दिखाई देने लगता है। प्रभावित स्थान पर गोलाकार चकत्ता उभर आता है जो लाल, रूखा सा एवं दरार सा फटा हुआ होता है और पपड़ी से भर जाता है। इसमें खुजलाहट नहीं होती है। दानेदार या फुन्सीदार खाज में कीटाणुओं के संक्रमण से इसके सूखे रूप में छोटे-छोटे दानेदार फुन्सियाँ निकल आती हैं। कुछ फुंसियाँ मिलकर फोड़े जैसा रूप बना लेते हैं। इसमें त्वचा सूजकर लाल हो जाता है और अनेक छोटे छोटे दाने या फुंसियाँ हो जाती हैं। इसमें माइट्स के अण्डे होते हैं एवं त्वचा मोटी होकर पपड़ी से ढक जाती है । फोड़ों के फूटने पर इसमें सड़ानें वाले कीटाणुओं का आक्रमण हो जाता है जिससे प्रभावित स्थान पर घाव बनकर सड़ने लगता है।

सारकोप्टिक खाज प्राय: कुत्तों, भेंड-बकरी एवं घोड़ों में मिलती है। यह रोग अधिकतर पशुओं के माथे, गर्दन, सींग, और पूँछ की जड़ में मिलता है। संक्रमित स्थान पर लाल दाने निकलते हैं जो शीघ्र ही फोड़ों में बदल जाते हैं। इनके फूटने पर गाढ़ा-पीला तैलीय स्राव निकलता है, पशु जब इन स्थानों को रगड़ता है तो वहाँ के बाल गिर जाते हैं।

कोरिओप्टिक खाज प्राय: भेडों एवं घोड़ों में देखने को मिलती है। यह शरीर के गर्दन, पूँछ और पैरों में होती है।

सोरोप्टिक खाज प्राय: भेड़ों में ही देखने को मिलती है। यह शरीर के गर्दन, पीठ, पूँछ की जड़ और पैरों में होती है।

जूँ प्राय: सभी घरेलू पशुओं में विशेषकर जाड़ों के दिनों में शरीर पर पाए जाते हैं। यह बालों के बीच रहते हैं। पशुओं को काटने एवं उनका रक्त चूसने से पशु प्राय: खाना-पीना छोड़ देते हैं, उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है, लगातार खुजलाते रहने से पशु के शरीर पर घाव बन जाते हैं, त्वचा मोटी हो जाती है, पशु प्राय: अशांत रहते हैं।

बाह्य परजीविओं से हानियाँ-

1- रक्तहीनता, दुर्बलता एवं उत्तेजकता पैदा करना।

2- पशु रोग से ग्रसित होकर अनुत्पादक हो जाते हैं एवं उनकी वृद्धि रुक जाती है।

3- खाज के संक्रमण से अत्यधिक खुजलाहट होती है एवं त्वचा में पपड़ी पड़ कर दरार बन जाती है।

4- जुएँ पड़ने एवं रक्त चूसे जाने से पशु प्राय: खाना-पीना छोड़ देते हैं, उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है, लगातार खुजलाते रहने से पशु के शरीर पर घाव बन जाते हैं एवं त्वचा मोटी हो जाती है।

उपचार-

इन परजीवियों के लिये जो परजीवी नाशक औषधियाँ हैं वे अत्यंत जहरीली होती हैं। इसलिये योग्य पशुचिकित्सक की सलाह और निर्देशों के अनुसार ही इनका प्रयोग नहलाने, धोने एवं लगाने में किया जाना चाहिये।

रोकथाम-

1- पशु के शरीर को साफ रखना चाहिये।

2- पशु के बाँधने की जगह पर मैलाथियान का (0.1 प्रतिशत का) या गैमेक्सीन या साईपरमेथ्रिन (150 पी पी एम) के घोल का छिड़काव जा सकता है।

दुधारू पशुओं में उत्पादन से संबंधित प्रसवकालीन बीमारियाँ

डॉ. शंकर सिंह
औषधि विज्ञान विभाग

अधिक उत्पादन क्षमता वाले दुधारू पशु प्रसव के पश्चात् अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्सर असमर्थ होते है। अत: इस समय उत्पादन से सम्बंधित बीमारियों के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। मनुष्य ने पशुओं का गहन अनुवांशिक चयन करके, दुग्ध उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी की है। लेकिन ज्यादा उत्पादकता, दुधारू पशुओं के विभिन्न चयापचयी एवं उत्पादन सम्बन्धी बीमारियों का कारक बनता जा रहा है। दुधारू पशुओं के जीवन में ब्याँत से तीन सप्ताह पूर्व एवं तीन सप्ताह बाद का समय काफी महत्वपूर्ण होता है। ब्याँत से तीन सप्ताह पूर्व, गर्भवती पशु के भ्रूण के पोषण हेतु ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है, लेकिन प्रसव के बाद पशु की शारीरिक ऊर्जा की माँग और भी ज्यादा हो जाती है। इस अवधि में प्रसव पीड़ा एवं शारीरिक परिवर्तन के कारण पशु की भूख में काफी कमी आ जाती है। इस समय यद्यपि पशु कम आहार लेता है फिर भी हार्मोनों के प्रभाव के चलते उसके दुग्ध उत्पादन में कमी नहीं आ पाती है। अत: ज्यादा उत्पादन एवं आहार में कमी के कारण पशु नकारात्मक ऊर्जा संतुलन की स्थिति में चला जाता है।

नकारात्मक ऊर्जा संतुलन, पशुओं के विभिन्न चयापचयी एवं उत्पादन से सम्बंधित बीमारियों के होने की सम्भावना बढ़ा देता है। अर्थात, यूँ कहें की पशु की शारीरिक आय कम एवं खर्च ज्यादा हो जाता हैं और पशु शारीरिक ऊर्जा रूपी कर्ज में चला जाता है। नकारात्मक ऊर्जा संतुलन में जाने के पश्चात, पशु अपने दुग्ध उत्पादन को स्थिर रखने के लिए मुख्यत: आपने शरीर में एकत्रित वसा का उपयोग करने लगता है। इस तरह शरीर में जमा चर्बी बहुत तेजी से ख़त्म होने लगती है। इस तरह चर्बी के ख़त्म होने से काफी पुष्ट दिखने वाला पशु ब्याँत के बाद कुछ दिनों में काफी दुबला पतला एवं कंकालनुमा दिखने लगता है। प्रसव के बाद मुख्य रूप से दुग्ध ज्वर, कीटोसिस, हाइपोमैग्नीसीमिया, पोस्टपार्चुरिएण्ट हीमोग्लोबिन्यूरिया, थनैला, सबक्लीनिकल रुमिनल एसिडोसिस, एबोमेसल विस्थापन, गर्भाशय शोथ, जेर का रुकना, प्रसवोत्तर एनिस्ट्रस, तथा प्रजनन सम्बन्धी अन्य विकार उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए, प्रसव से तीन सप्ताह पूर्व एवं तीन सप्ताह बाद उत्तम दुधारू पशुओं का उचित प्रबंधन काफी महत्वपूर्ण है। इस अवधि में पशुओं के आहार में परिवर्तन करके उन्हें उत्पादन से सम्बंधित विभिन्न बीमरियों से काफी हद तक बचाया जा सकता है। पशुपालक अपने पशुओं को इन बीमारियों से बचाने के लिए इन बिन्दुओं का पालन कर सकते हैं:-

- प्रसव के तीन सप्ताह पूर्व से पशु को कैल्शियम बिलकुल नहीं पिलायें। प्रसव के आखरी महीने में कैल्शियम की आवश्यकता चारे एवं भूसे से पूरी हो जाती है। अगर प्रसव के आखरी महीने में पशु को कैल्शियम खिलाया जाता है तो प्रसव के बाद कैल्शियम की कमी से होने वाली बीमारी जिसे दुग्ध ज्वर कहते हैं के होने की संभावना बढ़ जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आखरी महीने में कैल्शियम खिलाने से पशु के शरीर में पैराथॉर्मोन (एक हारमोन) सक्रिय नहीं हो पाता है। पैराथॉर्मोन पशुओं के हड्डियों से कैल्शियम निकालकर खून में लाने के लिए अति आवश्यक होता है। प्रसव के तुरंत बाद पशु को कैल्शियम की आवश्यकता बहुत ज्यादा हो जाती है। इस समय कैल्शियम की पूर्ति कैल्शियम खिलाकर नहीं की जा सकती है। इस समय कैल्शियम की पूर्ति के लिए हड्डियों से कैल्शियम का निकलना अति आवश्यक होता है। पैराथॉर्मोन अगर कम सक्रिय होगा तो हड्डियों से कैल्शियम निकल कर रक्त में जल्दी नहीं आ पायेगा एवं पशु कैल्शियम की कमी का शिकार हो जायेगा हैं । अत: गर्भावस्था के आखरी माह में कैल्शियम न खिलाना ज्यादा लाभकारी साबित होगा ।
- प्रसव के तीन सप्ताह पूर्व से रोजाना 50-60 ग्राम नौसादर (अमोनियम क्लोराइड) खिलाएँ। नौसादर का स्वाद कड़वा होता है। अत: इसे दलिया या चुनी में मिला कर दें। कम से कम प्रसव के पाँच दिन पूर्व तथा ज्यादा से ज्यादा पैतालीस दिनों तक खिलाया जा सकता है। नौसादर खिलाने से पशु के रक्त का पीएच थोड़ा अम्लीय हो जाता है जिससे पैराथॉर्मोन हार्मोन की हड्डियों से कैल्शियम निकालने की क्षमता बढ़ जाती है। अत: प्रसव के बाद खीस बनाने के लिए कैल्शियम ज्यादा तेजी से हड्डियों से निकलता हैं एवं रक्त में हुई कैल्शियम की कमी को पूरा करने में सक्षम हो जाता है। इस तरह पशु के शरीर में कैल्शियम की आपूर्ति आसानी से होती रहती हैं एवं पशु ज्यादा खीस या दूध देने के बावजूद भी कैल्शियम की कमी का शिकार नहीं हो पाता है। कैल्शियम की कमी नहीं होने से पशु पूर्ण आहार लेता हैं एवं नकारात्मक ऊर्जा में जाने से बच जाता है। कैल्शियम की कमी नहीं होने से ही पशुओं में प्रसव के समय या बाद होने वाली कई बीमारियाँ जैसे प्रसव के दौरान बच्चे का गर्भाशय से बहार आने में परेशानी होना, जेरी का रुकना, प्रसव से पूर्व या बाद सर्विकोवेजिनल या गर्भाशीय प्रोलैप्स (बेली फेंकना), समय से गर्भ धारण ना करना, गर्भाशय में मवाद बन जाना, थनैला आदि के होने की सम्भवना कम हो जाती है।
- प्रसव के तीन सप्ताह पूर्व से रोजाना 25-50 ग्राम विटामिन युक्त खनिज मिश्रण खिलाएँ। प्रसव से पूर्व खनिज मिश्रण खिलाने से पशु की रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ जाती है जो प्रसव के बाद होने वाली कई बीमारियों को रोकने में सहायक होता है। खनिज मिश्रण प्रसव के समय पशु को हुए स्ट्रेस से भी उबरने में सहायक होता है। खनिज मिश्रण खिलाने से प्रसव के बाद पशु का गर्भाशय अपने मूल रूप में जल्दी आ जाता हैं एवं पशु जल्द गर्भ धारण कर लेता है।
- प्रसव के बाद उच्च ऊर्जा वाले आहार दें। उच्च ऊर्जा वाले आहार का मतलब हैं कम मात्रा में खाने के बाद भी ज्यादा ताकत देने वाले आहार जैसे गुड़, बिनौले, ग्लिसेरोल इत्यादि।
- प्रसव के बाद एकाएक आहार नहीं बदलें। ज्यादातर पशुपालक दुधारू पशुओं को प्रसव के बाद एकाएक दलिया या अनाज (दाना) खिलाने लगते हैं ताकि दूध बढ़ जाय। लेकिन ऐसा करने से पशु के रुमेन (पेट) की अम्लीयता एकाएक ज्यादा हो जाती है जिसके चलते रुमेन में पाचन क्रिया को संचालित करने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में कमी हो जाता है। अत: पशु की पाचन क्रिया प्रभावित हो जाती हैं तथा पशु की भूख में कमी आ जाती है। भूख में कमी के कारण पशु नकारात्मक ऊर्जा में जाने लगता है फलस्वरूप कई बीमारियों के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। अत: प्रसव के बाद पशु के आहार में अनाज (दाने) या दलिया की मात्रा धीरे धीरे बढ़ाना लाभकारी होता क्योंकि ऐसा करने से पशु के पाचन क्रिया को संचालित करने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीव अनाज के पाचन के लिए अनुकूलित हो जाते हैं एवं रुमेन की अम्लीयता एकाएक ज्यादा नहीं हो पाता है । इस तरह पशु के दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी भी हो जाती है एवं पशु स्वस्थ भी रहता है।

प्रसव के दौरान पशु को कोई समस्या हो तो योग्य पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

पशु स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम

डॉ. नीरज कुमार गंगवार, डॉ. देवेश कुमार गिरी एवं डॉ. राहुल कुमार
पशुविकृति विज्ञान विभाग

पशुधन उद्योग से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि पशु स्वस्थ रहे, क्योंकि स्वस्थ पशु ही अपनी पूर्ण क्षमता तक लगातार दूध उत्पादन कर सकते हैं और उनकी बढ़वार उचित रहती है। पशुओं को स्वस्थ बनाये रखने में पशुपालकों की विशेष भूमिका रहती है, क्योंकि पशुओं का स्वास्थ्य सामान्यत: उनकी आवास व्यवस्था, खान-पान और बीमारी के प्रति जागरूकता पर निर्भर करती है। यदि इनमें से किसी भी एक संघटक में गिरावट आ जाय तो पशु के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: उचित आवास व भोजन व्यवस्था के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि पशुपालक अपने पशुओं को रोगों से मुक्त रखने हेतु समुचित प्रयास करे।

पशुओं में पाये जाने वाले रोगों को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-संक्रामक जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक या परजीवी जनित रोग तथा असंक्रामक रोग जो शरीर में किसी संघटक की कमी, विषाक्तता अथवा शारीरिक क्रियाओं में बदलाव के कारण हो सकता है। असंक्रामक रोग से एक समय में एक या दो ही पशु प्रभावित होते हैं, परन्तु संक्रामक रोगों से एक ही समय में बहुत पशु प्रभावित होते हैं। संक्रामक रोगों से पशु का बचाव समय रहते निदान व उपचार करके किया जा सकता है। इन रोगों से पशुपालकों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ती है क्योंकि इनमें से कुछ रोग तो ऐसे होते हैं, जिनके कारण पशु की दो-तीन दिन में ही मृत्यु हो जाती है। कुछ प्रमुख बीमारियों से बचाव हेतु टीके उपलब्ध हैं, जिनके उपयोग द्वारा रोगों से बचा जा सकता है। पशुओं में होने वाले कुछ प्रमुख संक्रामक रोग इस प्रकार है: एन्थ्रैक्स, ब्रुसैलोसिस, गलाघोंटू, ट्यूबरकुलोसिस (क्षयरोग), जोनिस रोग, ब्लैक क्वार्टर, थनैला, साल्मोनेलोसिस, लैप्टोस्पाइरोसिस आदि रोग जीवाणुजनित हैं जबकि खुरपका-मुँहपका, आईबीआर आदि विषाणुजनित रोग हैं।

संक्रामक रोग पशु के साथ चारा खाने , पानी पीने, गोबर, मुत्र या छींक आदि से फैल सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मच्छर, मक्खी, किलनी, पिस्सू इत्यादि भी इन रोगों को पशु से दूसरे पशु में फैलने में सहायक होते हैं। कुछ संक्रमण तो हवा के साथ-साथ काफी दूर तक जाकर स्वस्थ पशु को प्रभावित कर सकते हैं। पशुपालक कुछ बातों पर ध्यान देकर इन रोगों से अपने पशुओं को बचा सकते हैं। समय रहते पशुओं का टीकाकरण करा देने से कई रोगों से पशुओं को बचाया जा सकता है। ऐसे रोग जिनके टीके उपलब्ध हैं, इस प्रकार हैं-

1. खुरपका-मुँहपका रोग:-

इसकी रोक थाम के लिए पॉलीवैलेन्ट व मोनोवैलेन्ट, दोनों ही टीके उपलब्ध हैं। पॉलीवैलेन्ट टीके का उपयोग अधिक लाभकारी रहता है। यह टीका वर्ष में दो बार दिया जाना चाहिए।

2. गलाघोंटू रोग:-

इस रोग की रोकथाम के लिए ब्रॉथ व ऑयल एडजुवेंट टीके उपलब्ध हैं। इनमें से किसी भी टीके का उपयोग मई-जून माह मे किया जा सकता है। इस टीके का प्रति वर्ष प्रयोग किया जाना चाहिए।

3. ब्लेक क्वार्टर:-

इसके लिये पॉलीवैलेन्ट टीका उपयोग में लाया जा सकता है तथा इसका उपयोग मई-जून माह में प्रति वर्ष करना चाहिए।

4. ब्रुसेला रोग:-

इस रोग की रोकथाम के लिए स्ट्रेन-19 टीका उपलब्ध है, जिसका उपयोग छ: माह से बड़े पशुओं में एक बार किया जाना उचित रहता है।

इन रोगों के अतिरिक्त भी कुछ टीके उपलब्ध हैं जो अन्य पशुओं, जैसे घोड़े, सुअर, कुत्ते आदि में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे संक्रामक रोग, जिनके विरूद्ध कोई

बीमारी का नाम	आयु, (जब पहली खुराक दी जानी है)	आयु, (जब दूसरी खुराक दी जानी है)	पुनरावृत्ति
1. खुरपका-मुँहपका	चार माह	नौ माह की उम्र में	प्रत्येक वर्ष
2. गलाघोंटू	छ: माह	---	प्रत्येक वर्ष
3. ब्लॅक क्वार्टर	छ: माह	---	प्रत्येक वर्ष
4. खुरपका- मुँहपका, गलघोंटू एवं लँगड़ा बुखार का संयुक्त टीका (ट्रायो वैक)	चार माह	---	प्रत्येक वर्ष
5. संक्रामक गर्भपात	4-8 महीने की उम्र में केवल बछियों को (जीवन में एक बार)	---	---

भी टीका उपलब्ध नहीं है, उनकी रोकथाम अन्य सामान्य विधियों व चिकित्सा पद्धतियों द्वारा की जा सकती है।

अत: पशुपालकों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

1. पशुओं की समय-समय पर नियमित जाँच करायें तथा किसी प्रकार का संदेह होने पर तुरन्त पशुचकित्सक की सलाह लें।
2. यदि कोई पशु बीमार दिखाई दे, तो उसे तुरन्त अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए। बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में पशु आहार में कमी, सुस्ती, कभी-कभी ज्वर जैसे लक्षण पाये जाते हैं। अलग रखे गये पशुओं की देखभाल भी अलग से बाद में की जानी चाहिए।
3. बीमार पशु के उपचार की तुरन्त व्यवस्था करनी चाहिए तथा उसके बचे चारे, बिछावन, गोबर आदि को अच्छी प्रकार नष्ट कर देना चाहिए। पशुशाला के दरवाजे पर चूने की हल्की परत डालना उचित होता है।
4. पशुशाला के फर्श व दीवारों को 1-3 प्रतिशत फॉर्मलिन घोल से अच्छी तरह साफ करना चाहिए।
5. पशु को साफ व पौष्टिक चारा देना चाहिए, जिसे पशु अच्छी तरह से पचा सके।
6. नये खरीदे गये पशुओं को पुराने पशुओं के साथ तुरन्त न मिलाये तथा नये पशुओं को लगभग एक माह तक अलग रखे।
8. पशुओं को नियमित रूप से कीड़ों की दवा दें तथा टीके लगवायें तथा बाह्य परजीवियों से बचाव करें।

रूमेन स्वास्थ्य

डॉ. बृजेश यादव* एवं डॉ. जय सिंह**

**शरीर क्रिया विज्ञान विभाग*

***एस.आर.एफ., उपकार परियोजना*

रोमंथी जानवरों (गाय, भैंस, बकरी एवं भेड़) में पेट की संरचना मनुष्यों एवं अन्य स्तनधारियों से बिल्कुल अलग होती है, जिसके कारण उनमें पाचन प्रक्रिया भी भिन्न होती है। पाचन क्रिया किसी भी जीवधारी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसी से जीवों को विभिन्न शारीरिक क्रियाओं की वृद्धि एवं उत्पादन हेतु आवश्यक पदार्थ मिलते हैं। सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि रोमंथी पशुओं में पाचन क्रिया किस प्रकार अलग होती है। रोमंथी पशओं में पेट के चार भाग होते है, रुमेन, रेटिकुलम, ओमेसम एवं अबोमेसम। मूलत: रुमेन में ही चारे एवं भूसे का पाचन होता है जिसमें बैक्टेरिया, प्रोटोजोआ एवं कवक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। रुमेन में पाचन किण्वन से होता है तथा पाचन के पश्चात् विभिन्न विशिष्ट वसीय अम्लों का निर्माण होता है जो ऊर्जा, ग्लूकोज एवं वसा के निर्माण के लिये शरीर द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। रुमेन के इन सूक्ष्म जीवधारियों में स्वयं द्वारा प्रोटीन बनाने की क्षमता भी होती है। इन तथ्यों से यह पता चलता है कि रोमंथी पशुओं की पाचन क्रिया बाकी स्तनधारियों की पाचन क्रिया से भिन्न होती है तथा उसको सुचारु रखने हेतु रुमेन स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

1. रोमंथी पशुओं के राशन में कभी भी अचानक बदलाव नहीं करना चाहिये, खासकर राशन में अनाज की मात्रा में बदलाव धीरे-धीरे करना चाहिये।
2. शादियों अथवा अन्य उत्सवों के पश्चात् बचे हुए खाने को पशुओं को देने से परहेज करना चाहिये।
3. बरसीम एवं लुसर्न घास तथा अरहर के भूसे को ज्यादा खिलाने से झागदार गैस रुमेन में भर जाती है जिससे आवश्यक उपचार न होने पर मृत्यु भी हो सकती है। अत: इन घासों एवं भूसे का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिये।
4. रुमेन का स्वास्थ्य, रुमेन के सूक्ष्मजीवों के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। अत: उनके उर्जा के लिए निश्चित मात्रा के राशन में अनाज अथवा हरी घास के माध्यम से स्टार्च की पूर्ति होनी चाहिये।
5. शहरों एवं कस्बों में गाय या भैसें जो चरने जाती हैं, उन्हें पॉलीथीन खाने से रोकना चाहिये क्योंकि पॉलीथीन का पाचन रुमेन में सम्भव नहीं है।
6. औद्योगिक शहरों एवं कस्बों में पशुओं को उन क्षेत्रों में चरने से रोकना चाहिये, जहाँ घास में कील, तार अथवा कोई नुकीली वस्तु होने की सम्भावना हो।
7. पशुओं को पीने का पानी प्रदूषित नहीं होना चाहिये।
8. ठंडी के मौसम में पशुओं को गुनगुना अथवा ताजा पानी देना चाहिये।
9. पशुओं को सुबह के समय चरने से रोकना चाहिये, जिससे कि घास के माध्यम से परजीवियों के अण्डों अथवा लार्वा को पशुओं में प्रवेश से रोका जा सके।
10. प्रत्येक 6 महीने में कीड़े मारने की दवा पशुओं को देना अत्यन्त आवश्यक है।

पशुओं में ट्रॉमेटिक रेटिकुलो पेरीकार्डाइटिस (टी.आर.पी.): कारण, लक्षण, उपचार तथा आवश्यक सुझाव

डॉ. विवेक मलिक, डॉ. सुधीर सिंह एवं डॉ. अभिषेक राजपूत
शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विज्ञान विभाग

रोग परिचय

ट्रॉमेटिक रेटिकुलो पेरीकार्डाइटिस मुख्य रूप से गाय-भैंस में होने वाला रोग है जिसे हार्डवेयर रोग, धातुजनित सामग्री रोग या टी. आर. पी. के नाम से भी जाना जाता है। इसमें किसी नुकीली वस्तुओं के द्वारा पेट के सबसे आगे वाले भाग (रेटिकुलम) की दीवार में छेद हो जाता है जिससे उदर गुहा का संक्रमण एवं सूजन (पेरीटोनाइटिस) एवं दर्द होता है। यह रोग मुख्यत: रोमन्थी (जुगाली करने वाले) पशुओं में पाया जाता है क्योंकि यह चारे को बिना चबाये निगल जाते है।

रोग के कारण

इस रोग का मुख्य कारण, प्राय: धातु की बनी हुई नुकीली वस्तुऐं जैसे सुई, कील, तार एवं काँच के टुकड़े आदि का चारे के साथ निगला जाना होता है। यह रोग मुख्यत: आवारा पशुओं में होता है जो कि सड़क के किनारों पर एवं लोहे के कारखानों के आस-पास चारे कि तलाश में घूमते रहते हैं। पालतू एवं चारागाहों में चरने वाले पशुओं में यह रोग सामान्यत: कम पाया जाता है। नुकीली वस्तु ग्रासनली के द्वारा पेट के सबसे बड़े भाग (रूमेन) से होते हुये पेट के सबसे आगे वाले भाग (रेटिकुलम) में अपने भार के कारण एकत्रित हो जाती है और रेटिकुलम में संकुचन के समय यह छेद कर देती है जिससे पेरीटोनाइटिस हो जाती है। कभी-कभी ये नुकीली वस्तुयें रेटिकुलम के संकुचन के कारण डायफ्राम में छेद कर हृदय की दिशा में आकर उसमें घाव करती है जिससे हृदय की बाहरी झिल्ली मे संक्रमण एवं सूजन (ट्रॉमेटिक रेटिकुलो पेरीकार्डाइटिस) हो जाता है।

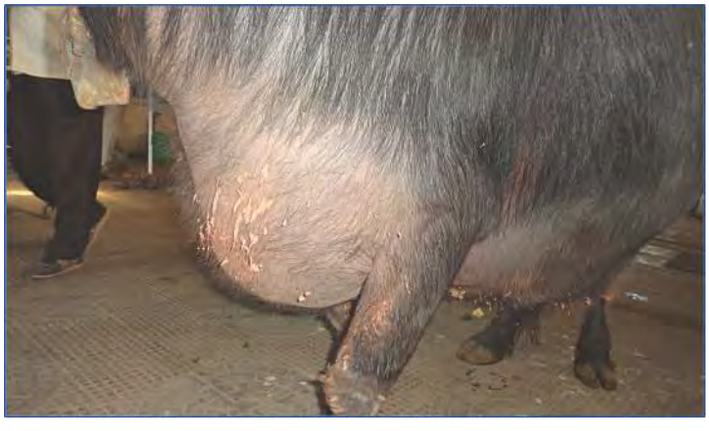

रोग के लक्षण

- तीव्र बुखार
- पशु चारा व पानी लेना कम कर देता हैं।
- पशुओं को चलने, उठने, बैठने में पीड़ा होती है।
- छाती में दर्द के कारण पशु आगे के पैरों को चौड़ा करके खड़ा होता है।
- दूध की मात्रा में भारी कमी हो जाती है।
- पशु मुँह खोलकर साँस लेता है।
- पशु के लोटे पर एवं पैरों में सूजन आ जाती है।
- गर्दन की शिरा में रक्त का प्रवाह दूर से ही प्रतीत होता है।

रोग की देखभाल

- लक्षण प्रकट होने पर तुरंत योग्य पशुचिकित्सक से संपर्क कर उनसे उपचार कराना चाहिए।
- पशु को एक स्थान पर बांध के रखना चाहिए।
- अगले पैरों को पिछले पैरों की उपेक्षा ऊँचा रखना चाहिए।
- रेशेदार चारे का प्रयोग कम करना चाहिए।

पशु पालकों हेतु आवश्यक सुझाव

- पशुओं को खुले में एवं कारखानों के आसपास चरने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए।
- पशुओं को चारा डालने से पहले उसकी जाँच कर लेनी चाहिये।
- पशुओं में लक्षणों के दिखने पर तुरन्त पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए।

हरे चारे की साल भर उपलब्धता कैसे बनायें रखें

डॉ. विनोद कुमार, डॉ. देवाशीष रॉय एवं डॉ. शालनी बासवानी
पशु पोषण विभाग

भारत चूँकि एक कृषि प्रधान देश है अत: पशुओं का पोषण प्रमुख रूप में कृषि उपज तथा फसलों के चक्र पर निर्भर करता है। हमारे देश में पशुओं के पोषण के लिए उपलब्ध दाना, चारा व दूसरे कृषि उत्पाद की मात्रा जरूरत से कम है। इसलिए पशु आहार का संतुलित होने के साथ-साथ सस्ता होना अनिवार्य है।

पशु आहार का वर्गीकरण रेशेदार चारा एवं दाना मिश्रण के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है:-

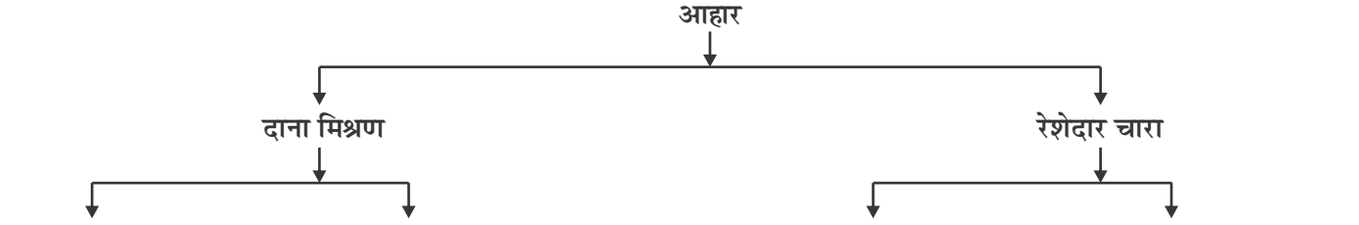

हरा चारा पशुओं के लिए सस्ते प्रोटीन व शक्ति का मुख्य स्रोत है तथा दो दलहनी चारे की फसलों से प्राप्त, दाने या रातिब से प्राप्त प्रोटीन दाने से सस्ती होती है। कम लागत में दुधारू पशुओं को पौष्टिक तत्व प्रदान करने के लिए हरा चारा पशुओं को खिलाना जरूरी हो जाता है।

हरे चारे की विशेषताएँ:

चारा स्वादिष्ट, रसदार, सुपाच्य तथा दुर्गन्ध रहित होना चाहिए। चारे की फसल कम समय में तैयार होने वाली, अधिक पैदावार देने वाली, कई कटाई वाली होनी चाहिए। फसलों में जल्दी फुटवार होनी चाहिए, साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए तथा जहरीले पदार्थ रहित होनी चाहिए। हरे चारे की नस्ल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी उगाने योग्य होनी चाहिऐ।

चारे की मुख्य फसल:

दो दाल वाली फसलों में मुख्यत: वार्षिक फसल रबी में बरसीम, खरीफ में लोबिया, ग्वार तथा एक दाल वाली फसलों में रबी में जई, सर्दियों की मक्का, खरीफ में मक्का, ज्वार, बाजरा, मकचरी आदि हैं। जड़ों में शलगम, तिलहन में सरसों तथा बहुवर्षीय दलहनी फसलों में रिजका, स्टाइलो, राईस बीन आदि, घासों में हाथी घास, पारा, गिनी, दीनानाथ, मीठा सुडान, रोड, नन्दी, राई, घास आदि मुख्य चारे की घासें हैं।

देश में प्राय: साल में दो बार हरे चारे की तंगी के अवसर आते हैं। ये अवसर है- अप्रैल, जून (मानसून प्रारम्भ होने से पहले) तथा नबम्बर, दिसम्बर (मानसून खत्म होने के बाद) जबकि पशुओं की साल भर हरे चारे की जरूरत पड़ती है। चारे उगाने की उचित वैज्ञानिक तकनीक अपना कर पर्याप्त मात्रा में हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

चारा उगाने की तकनीक:

भूमि व जलवायु:- दूसरी फसलों की तरह चारे की फसल को अच्छी निकासी वाली उपजाऊ दोमट से लेकर रेतीली परन्तु समतल भूमि अच्छी रहती है। सफल चारा उत्पादन के लिए मुख्य रूप से पानी, हवा, सूर्य का प्रकाश व अच्छी उपजाऊ भूमि जरूरी है। पहली तीन जलवायु से सम्बन्ध रखती है जो कि लाभकारी उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। खरीफ में 25 से 35° सेंटीग्रेड तापक्रम फसलों के लिए उपयुक्त माना जाता है। परन्तु क्षेत्र की जलवायु के अनुसार चारे की किस्मों का बोना ही उचित है।

बोने का समय व विधि:- मुख्य चारे की फसलें मुख्यत: लाईन में ड्रील, पोरा, केरा विधि से बोई जाती है। परन्तु छोटे आकार के बीज वाली फसलें जैसे बरसीम, रिजका, सरसों, बाजरा आदि बराबर मात्रा में मिट्टी आदि मिलाकर छिट्टा विधि से भी बोते हैं। दूसरी विधि है जड़ों व तनों की कटाई करके जैसे हाथी घास (रोपण समय मार्च से जून तक) 50 से.मी. लम्बा तना लेकर जिसमें 2-3 कली हो आधा भाग जमीन में तथा आधा भाग भूमि के ऊपर रखकर

लाईन में गाड़ कर बोते हैं। परन्तु उत्तर प्रदेश में मुख्यत: हाथों से बीज को खेत में बिखेरकर फट्टे से मिट्टी में मिलाया जाता है ताकि बीज अंकुरित हो सके।

फसल मिश्रण:-

चारे की फसल मिश्रण में बोने पर साधारण बीज दर पर प्रति हैक्टेयर आधी कर देनी चाहिए। दलहनी फसल वातावरण से नत्रजन मूसला जड़ों की मोटी ग्रन्थियों द्वारा लेती है इसी कारण दलहनी चारे में अदलहनी की तुलना में प्रोटीन अधिक, शुष्क पदार्थ कम तथा हेमीसैल्यूलोज कम रहता है। अत: इनसे हे बनाना अच्छा रहता है। फसल मिश्रण में पैदावार भी ज्यादा होती है। तथा खेत की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है।

सघन चारा फसल उत्पादन:

खेत में 30 से 40 टन गोबर की खाद (कम्पोस्ट) प्रति हैक्टेयर साल में एक बार डालें। सीड ड्रिल का प्रयोग करके मक्का, ज्वार, बाजरा, ग्वार आदि फसलें बोयें। एक दाल व दो दाल वाली चारे की फसलों को मिश्रण में बोये जैसे मक्का-लोबिया-ग्वार, बरसीम-जई-सरसों, बरसीम-लूर्सन ताकि अधिक पैदावार तथा अच्छे पौष्टिक चारे के साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बनी रहे।

सिंचाई हल्की तथा अन्तिम सिंचाई कटाई से गर्मियों में 5-6 दिन पूर्व कर दें ताकि बची नमी पर अगली फसल बोई जा सके। कई कटाई वाली फसलें चक्र में अवश्य रखें जैसे बरसीम, रिजका, मीठा सुडान, हाथी-घास, बाजरा, मकचरी आदि। परन्तु इनकी कटाई भूमि सतह से 4-5 से.मी. ऊपर से करें ताकि अगली कटाई में शीघ्र फुटवार वा बढ़ोतरी हो। यदि हाथी घास मिश्रण में बोया हो तो इसकी प्रत्येक कटाई विशेषत: गर्मियों में 3 सप्ताह के क्रम में कर लें ताकि दूसरी मिश्रित फसल रिजके आदि को प्रकाश संश्लेषण के लिए पर्याप्त सूर्य की रोशनी मिल सके।

यदि बरसीम बोयें तो पहली कटाई में अधिक पैदावार लेने के लिए चाइनीज कैबेज अथवा सरसों अवश्य बोयें। पानी की भरी बाल्टी में बीज डालकर चिकोरी खरपतवार को बरसीम से पहले ही अलग कर दें। कटाई लगातार करते रहे देरी से करने पर विशेषकर मार्च में चने का कैटरपिलर बरसीम में आ जाता है। यदि इन्डोसल्फान आदि छिड़काव करना पड़े तो बरसीम को इसके छिड़काव से 15 दिन पूर्व ही काट कर खिला दें। वैसे पेस्टीसाईड अगर न छिड़के तो ही अच्छा रहेगा और बरसीम को तुरन्त काटकर खिला देना चाहिए। अधिक चारा उत्पादन देने वाली प्रमाणिक बीजों को ही बोना चाहिए तथा सन्तुलित उर्वरक एन.पी.के. का प्रयोग करना चाहिए। मानसून घासों की कटाई पर्याप्त पौष्टिकता बने रहने पर करे या हे बनाकर संरक्षित कर लें। मुख्यत: पशुओं को हरा चारा 4 महीने पर्याप्त व 4 महीने आधा सूखा हरा ही पर्याप्त होता हैं। सारे वर्ष हरा चारा खिलाने के लिए साईलेज या हे बनाने का प्रावधान भी रखें।

मुख्य चारे की फसलों की किस्में व फसल चक्र:

अच्छे उत्पादन के विभिन्न फसल चक्र का चुनाव वहाँ की जलवायु अथवा मिट्टी की संरचना पर आधारित है। उत्तर में रबी के मौसम में बरसीम, जई, सेंजी, मेथा आदि फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं। दक्षिणी इलाकों में जहाँ सामान्यत: तापमान 12-15 से. ग्रे. से नीचे नहीं आता ऐसे इलाकों में ज्वार, मक्का, स्टाइलो, बाजरा, हाथी घास, गिनी घास, पैरा घास व मकचरी आदि उगाये जा सकते हैं। कम वर्षा वाले इलाकों में कम पानी की आवश्यकता वाली फसलें उगाना उत्तम रहता है जैसे सूडान घास, ज्वार, अंजन, ब्ल्यू पैनिक आदि। इन बातों को ध्यान में रखकर विभिन्न इलाकों के लिए अच्छी पैदावार के लिए फसल की किस्में व चक्र अपनायें जा सकते हैं। उत्तरी क्षेत्र में उपयोगी फसल चक्र को नीचे दिया गया है।

उत्तरी क्षेत्र व उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र के लिए:

सघन चारा उत्पादन के लिए सिंचित भूमि –
- क) मक्का+लोबिया-ज्वार+लोबिया-बरसीम+सरसों
- ख) नेपियर+लोबिया-बरसीम+सरसों
- ग) नेपियर रिजका
- घ) एम. पी. चरी-बरसीम
- ड.) बाजरा+लोबिया-मक्का+लोबिया-जई+चाईनीज कैबेज (राजस्थान के लिए)

मिश्रित फसल के लिए सिंचित भूमि के लिए –
- क) नेपियर-बरसीम
- ख) नेपियर+चरी+बाजरा+मक्का+लोबिया-बरसीम+सरसों
- ग) मक्का+लोबिया- मक्का+लोबिया
- घ) मक्का+लोबिया-ज्वार/ग्वार+शलजम-जई/सरसों
- ड़) हाथी घास और रिजका
- च) मक्का+लोबिया-गेहूँ-तिलहन-जौ
- छ) बाजरा-ग्वार-जई-मक्का

पहाड़ी इलाकों के लिए –
- क) मक्का+लोबिया-शलजम-जई+मटर
- ख) मक्का+लोबिया-जई+रिजका+जापानी रेप

चारे वाली फसलों की विभिन्न किस्में

1.	ज्वार:-	पी. सी.-6, 9, 23, एम.पी.चरी, पूसा चरी, हरियाणा चरी
2.	मक्का:-	गंगा सफेद 2, 3,5, जवाहर, अम्बर, किसान, सोना, मंजरी, मोती
3.	बाजरा:-	जाइन्ट हाईब्रिड, के-674, 677, एल-72, 74, टी-55, डी-1941, 2291
4.	जई:-	एच.एफ.ओ.-14, ओ.एस.-6 एवं 7, वी.पी.ओ.-94
5.	लोबिया:-	एस-450,457,रशियनजाइन्ट, यू.पी.सी.-287,286, एन.पी., एच.एस.पी.-42-1,सी.ओं-1,14
6.	ग्वार:-	दुर्गापुरा सफेद, आई.जी.एफ.आर.आई.-212
7.	राईसबीन:-	के-16, 1
8.	बरसीम:-	मैस्कावी, बरदान, बुन्देला, यू.पी.
9.	रिजका:-	टाईप-8,9, आनंद-द्वितीय, आई.जी.एफ.आर.आई.-एस-244,54, एल.एल.सी.-5 बी.-103
10.	सैंजी:-	फस-1, एफ. एस.-18
11.	मेंथी:-	फस-8
12.	हाइब्रिड नेपियर:-	पूसा जाइन्ट नेपियर, एन.बी.-21, ई.बी.-4, गजराज, कोयमबटूर
13.	सुडान घास:-	एस.एस-59-3, जी-287, पाईपर, जै-69
14.	दीनानाथ घास:-	टाईप-3, 10,15 आई.जी.एफ.आर.आई.-एस 3808, जी-73-1, टी-12
15.	अंजन घास:-	पूसा जाइन्ट अंजन, आई.जी.एफ.आर.आई.-एस 3108, 3133, सी-357, 358
16.	सरसों:-	जापानी रेप, आ एम-98, 100, लाही-100, चाईनीज कैबेज एफ 2-902, 916

निदेशक प्रसार की कलम से....

प्रिय पाठक बन्धुओं,

वैसे तो आपकी प्रिय पशुधन पत्रिका लम्बे समय से प्रकाशित हो रही है, किन्तु इस अंक में कुछ परिवर्तन करते हुए पाठकोपयोगी सामग्री को नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पशुधन पत्रिका के प्रस्तुत वर्तमान अंक की विषय वस्तु मुख्यत: पशुओं की रोगों एवं वाह्य परजीवियों से रक्षा, जनवरी माह से जून माह तक स्वास्थ्य रक्षा हेतु ध्यान देने योग्य तथ्यों, प्रजनन सम्बन्धी अनियमितताओं, पोषण के प्रभाव व मुर्गी पालन से सम्बद्ध आकर्षक पहलुओं पर प्रकाश डाल रही है। भरसक प्रयास के बाद भी यह संभव नहीं हो पाता है कि सम्पूर्ण जानकारी एक बार में ही उपलब्ध करायी जा सके। एक माह से कम समय में उपलब्ध सामग्री का संशोधन व सम्पादन नि:संदेह एक कठिन कार्य है परन्तु सम्पादक मण्डल ने इसे सफलता पूर्वक सम्पन्न किया है। खुरपका- मुँहपका जुगाली करने वाले गाय-भैंसों तथा शूकरों में अधिकतर बसन्त ऋतु में होने वाला छुआ-छूत से फैलने में सक्षम विषाणु जन्य संक्रामक रोग है, जिसके सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देने के साथ-साथ पशुओं की त्वचा के ऊपर रहने वाले बाह्य परजीवियों के बारे में भी जानकारी प्रदान की गयी है। पशुओं में अनुर्वरता की समस्या, प्रजनन सम्बन्धी अनियमितताएं तथा निरन्तर उत्पादकता हेतु संतुलित पोषण व ऊर्जा के स्तर की उपयोगिता पर पशुपालक उपयोगी लेख प्रकाशित हैं। जनवरी माह से जून माह तक पशुओं के स्वास्थ्य प्रबंधन पर ध्यान देने योग्य तथ्यों को दर्शाता हुआ अर्ध वार्षिक स्वास्थ्य कलैण्डर के रूप में नितान्त आवश्यक लेख के साथ-साथ मुर्गी पालन से सम्बन्धित कई जिज्ञासाओं का समाधान करता हुआ आकर्षक लेख भी शामिल है। पशुधन पत्रिका में प्रकाशित लेख संस्थान के अधिकारियों, शिक्षकों व छात्रों के मौलिक विचारों तथा चिंतन के प्रतीक हैं तथा उनके सार्थक योगदान हेतु मैं हृदय से उनका आभार प्रकट करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आप सभी अपने विचारों को पशुपालकोपयोगी लेख के माध्यम से हम तक पहुँचाने का कष्ट करते रहेंगे ताकि आपके सहयोग से पत्रिका का प्रकाशन निर्बाध रूप से जारी रहे

सर्वजीत यादव

किसान मेला एवं कार्यशाला

विश्वविद्यालय : पशुपालकों के द्वार